जैन प्रमाणवाद का पुनर्मूल्यांकन

—डा. संगमलाल पांडेय

प्रमाण की परिभाषा के बारे में जैन दार्शनिकों में ऐकमत्य नहीं है। उमास्वाति, सिद्धसेन दिवाकर, अकलंक, विद्यानन्द, माणिक्यनन्दि, हेमचन्द्र सूरि आदि प्रमुख जैनतर्कशास्त्रियों ने प्रमाण की विभिन्न परिभाषायें दी हैं। उदाहरण के लिये, सिद्धसेन दिवाकर कहते हैं— प्रमाण वह है जो आत्मा और विषय को प्रकाशित करता हैं।[1] माणिक्यनन्दि कहते हैं कि प्रमाण वह है जो अनधिगत या अपूर्व अर्थ का ज्ञान कराता है[2] और हेमचन्द्र सूरि कहते हैं— कि प्रमाण वह है जो सम्यक् अर्थ-निर्धारण करता है।[3] अब प्रश्न है—जैनतर्कशास्त्र में यह मत-भेद क्यों हैं? वास्तव में जैनतर्कशास्त्री अपने समकालीन भारतीय तर्कशास्त्र का परिशीलन करते रहे और जैनेतर तर्कशास्त्र से प्रभावित होते रहे। यही कारण है कि प्रमाण के बारे में उनकी अनेक परिभाषायें हैं।

परन्तु तर्कशास्त्र के प्रत्येक विषय की जैन परिभाषा देना तर्कतः असम्भव तथा अनावश्यक है। प्राचीन काल में तर्कशास्त्र को संस्कृत भाषा अथवा संस्कृत व्याकरण की भांति सभी भारतीय दार्शनिकों के लिये मान्य होना चाहिये था क्योंकि वह सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र या सर्वमान्य है। किन्तु साम्प्रदायिकता के युगों में तर्कशास्त्र के इस सर्वमान्य स्वरूप का साक्षात्कार जैनतर्कशास्त्री न कर सके। असंगत और विफल होते रहने पर भी वे प्रमाण, प्रत्यक्ष, अनुमान आदि की जैन परिभाषा देने का प्रयास करते रहे; किन्तु आज ऐसे प्रयासों का महत्व नहीं है। आज हमें प्रमाण की ऐसी परिभाषा देने का प्रयास करना चाहिये जो सर्वमान्य हो, और जिसका सम्बन्ध सम्प्रदाय-विशेष से न हो। कदाचित् इस ओर स्वयं जैनतर्कशास्त्र के इतिहास का विकास होता रहा है, कम से कम हेमचन्द्र सूरि ने जो प्रमाण की परिभाषा दी है, वह ऐसा संकेत देती है। उनकी प्रमाण-परिभाषा सर्वमान्य होने का दावा करती है। उनके अनुसार सम्यक् अर्थ का निर्धारण प्रमाण है।[4]

पुनश्च, प्राचीन जैन आचार्यों ने ज्ञान तथा प्रमाण में कोई अन्तर नहीं किया था। किन्तु हेमचन्द्र सूरि ने यह अन्तर किया है जो ठीक ही है। हिन्दू नैयायिकों ने प्रमा या सम्यक्ज्ञान के कारण को प्रमाण कहा है[5] और इस प्रकार प्रमाण का सम्बन्ध सत्य ज्ञान से जोड़ा है। पहले प्रमाण अनुभव का साधन माना जाता था किन्तु कालान्तर में वह सत्यापन या प्रमाणीकरण की प्रक्रिया हो गया। वह अनुभव-साधन से परोक्ष-साधन हो गया।

किन्तु प्रमाण की चाहे जो परिभाषा हो, प्रमाण दो प्रकार का होता है :—प्रत्यक्ष और परोक्ष। इसे सभी जैन आचार्य मानते हैं। फिर वे प्रत्यक्ष को परोक्ष से ज्येष्ठतर प्रमाण नहीं मानते हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष परोक्षपूर्वक होता है।[6] इससे स्पष्ट है कि जैन आचार्य प्रत्यक्षवादी (Empiricist) नहीं हैं। उनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति कांट जैसी है। वे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों को अन्योन्याश्रित मानते हैं। अतः जैसे वे प्रत्यक्षवादी नहीं है, वैसे ही बुद्धिवादी (Rationalist) भी नहीं हैं। उनका मत कांट के आलोचनावाद (Criticism) के सन्निकट है।

किन्तु कांट का आलोचनावाद शुद्ध ज्ञानमीमांसा का सिद्धान्त है और जैन प्रमाणवाद ज्ञान-मीमांसा से अधिक मूल्यमीमांसा (Axiology) से सम्बन्धित है। उन्होंने आलोचनावाद का प्रयोग अपने संव्यवहारवाद (Pragmatism) के लिये किया है। प्रमाण अर्थ का सम्यक् निर्धारण है और अर्थ हेय, उपादेय तथा उपेक्षणीय तीन प्रकार का है।[7] इस प्रकार त्रिमूल्यीय अर्थ के विनिश्चय का साधन प्रमाण है। इन तीन अर्थों का विनिश्चय करने के अनन्तर उपादेय को प्राप्त करना और हेय तथा उपेक्षणीय का परिहार करना जैन प्रमाणवाद का मुख्य लक्ष्य है। सांव्यवहारिक होने के कारण जैन प्रमाणवाद कांट के आलोचनावाद से भी अधिक गहन और व्यापक है। इसने कांट के प्रत्यक्ष और संप्रत्यय दोनों को परोक्ष के अन्तर्गत रखा है और फिर परोक्ष का आलोचनात्मक समन्वय उस ज्ञान से किया है जिसे कांट तर्क-बाह्य मानता है और जो समाधि-ज्ञान या अलौकिक ज्ञान है। जैनियों का यह सांव्यवहारिक आलोचनावाद आधुनिक विश्व-संस्कृति और मूल्यमीमांसा के लिये अत्यन्त सारगर्भित है। यह सभी प्रकार के अनुभवों के सत्यापन का मानदण्ड प्रस्तुत करता है। इसका महत्व आधुनिक युग में बढ़ता जा रहा है, क्योंकि आज नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र के क्षेत्रों में भी तर्कशास्त्र का विकास हो रहा है।

किन्तु जैन प्रमाणवाद इतना ही नहीं है, उसका समुचित परिचय प्राप्त करने के लिये जैनतर्कशास्त्र और इसके समूचे इतिहास का विचार करना है। जैनियों के लिये प्रमाणवाद एक तार्किक दृष्टिकोण है। वह तर्कशास्त्र का पर्याय है क्योंकि कम से कम माणिक्यनन्दि और हेमचन्द्रसूरि के न्याय-ग्रन्थों से यह स्पष्ट है। इस प्रकार प्रमाणवाद के विशेष विवेचन में समूचे तर्कशास्त्र के स्वरूप और महत्व का विवेचन अपेक्षित है। जो यहाँ थोड़े समय में सम्भव नहीं है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम प्रमाणवाद का सामान्य विवेचन नहीं कर सकते हैं। स्वयं जैनियों के अनुसार परिभाषा या लक्षण द्विविध है—सामान्य लक्षण और विशेष लक्षण। इस सिद्धान्त का उपयोग करते हुए हम यहाँ प्रमाणवाद का सामान्य विवेचन करना चाहते हैं। हमारा प्रयोजन यहाँ जैनतर्कशास्त्र की उन विशेषताओं को जानना है जो जैनियों के लिये आवश्यक हैं, जिनका विकास केवल जैनियों ने किया है और जिनका महत्व आज शुद्ध विज्ञान के युग के लिये भी बहुत बड़ा है।

परन्तु ऐसा विवेचन करने के पूर्व हम पहले उन धारणाओं का निराकरण करना चाहते हैं जो जैनतर्कशास्त्र के बारे में अत्यन्त प्रचलित हैं।

जैनतर्कशास्त्र के बारे में प्राचीन काल से ही तीन धारणायें चली आ रही हैं। एक, जैनतर्कशास्त्र भारतीय दर्शन के अन्य तर्कशास्त्रों से विशेषतः न्याय-दर्शन के तर्कशास्त्र से भिन्न है और जैन विद्वानों ने न्याय-दर्शन और बौद्धदर्शन के तर्कशास्त्रों के सामानान्तर अपना स्वतन्त्र तर्कशास्त्र बनाने का प्रयास किया है। दूसरे, जैनतर्कशास्त्र का सीधा सम्बन्ध जैन-ज्ञानमीसांसा और जैनतत्त्व-मीमांसा से है। तीसरे, जैन दार्शनिकों का विचार है कि जैनतर्कशास्त्र अन्य भारतीय तर्कशास्त्रों से श्रेष्ठतर है। अब तर्कशास्त्र के आधुनिक विकास के आधार पर इन तीनों धारणाओं को भ्रान्त सिद्ध किया जा सकता है। प्राचीनकाल में तर्कशास्त्र का आधार ज्ञानमीमांसा था और ज्ञानमीमांसा का आधार तत्त्वमीमांसा था। सम्भवतः इसी कारण जैन और बौद्ध दार्शनिकों ने अपनी-अपनी तत्त्वमीमांसा और ज्ञानमीमांसा के दृष्टिकोण से अपने-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने तर्कशास्त्र का विकास किया। परन्तु यदि हम उनके तर्कशास्त्र की तुलना न्याय-दर्शन के तर्कशास्त्र से करें तो पता चलेगा कि वास्तव में इन तीनों के तर्कशास्त्र में कोई मौलिक अन्तर नहीं है और ये तीनों एक ही प्रकार के तर्कशास्त्र की स्थापना करते हैं। आधुनिक युग में तर्कशास्त्र ज्ञानमीमांसा और तत्त्व-मीमांसा से स्वतन्त्र हो गया है। इसलिये आज यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई है कि तर्कशास्त्र किसी तत्त्वमीमांसा या ज्ञानमीमांसा से निकला हुआ शास्त्र नहीं है। उदाहरण के लिये, भारतीय न्याय-वाक्य जैन, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, मीमांसक, और वेदान्ती सभी के दर्शनों में मूलतः एक ही है। उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा तर्कशास्त्र के मुख्य विषय हैं। न्यायभाष्यकार वात्स्यायन के इस मत को सभी मानते हैं। हेतु तर्कतः सत्य या आभासित होता है, इसको भी वे सभी मानते हैं। इस प्रकार देखने से स्पष्ट है कि वास्तव में विभिन्न दर्शनों के होते हुए भी भारत में एक ही प्रकार का तर्कशास्त्र विकसित हुआ। उस तर्कशास्त्र को हिन्दू, बौद्ध और जैन के वर्गों में बाँटना प्राचीन विद्वानों का वर्गीकरण-दोष था, जिसके चक्कर में शेरबात्स्की, सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एच० एन० रैन्डिल, सुखलाल संघवी आदि आधुनिक विद्वान भी पड़ गये हैं। भारत में जो तर्कशास्त्र विकसित हुआ है वह द्विमूल्यीय तर्कशास्त्र है। वह हिन्दू, जैन, बौद्ध न होकर शुद्ध भारतीय है। पुनश्च सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने जैनतर्कशास्त्र के बारे में एक और भ्रान्त धारणा फैला दी है। वह यह है कि जैनतर्कशास्त्र मध्ययुगीन भारतीय तर्कशास्त्र है[8] किन्तु वास्तव में प्राचीनकाल से लेकर आज तक जैन दार्शनिक तर्कशास्त्र का विकास करते आये हैं। महावीर स्वामी (५६६-५२७ ई० पू०) भद्रबाहु (प्रथम), उमास्वाति (प्रथम शताब्दी ईसवी), भद्रबाहु द्वितीय (३७५ ई०), सिद्धसेन दिवाकर (४८० ई०), जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण समन्तभद्र (६०० ई०), अकलंक (७५० ई०), माणिक्यनन्दि (८०० ई०), मल्लवादी (८२७ ई०), हेमचन्द्रसूरि (११०० ई०), हरिभद्र (११२० ई०), मल्लिसेन (१२९२ ई०), यशोविजय (१७वीं शताब्दी), सुखलाल संघवी (२०वीं शताब्दी) आदि जैनियों ने तर्कशास्त्र का विकास किया है और इनका काल प्राचीनकाल से लेकर आज तक है। वास्तव में समस्त जैनतर्कशास्त्र प्राचीन न्याय तर्कशास्त्र की परम्परा में है। उसे मध्ययुगीन या आधुनिक नहीं कहा जा सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि तर्कशास्त्र में जैनियों का मुख्य योगदान क्या है जिसका महत्त्व आज भी है। हम नहीं मानते कि जैनतर्कशास्त्र का महत्व केवल जैनधर्म के लिये है। हमारे विचार से जैन-तर्कशास्त्र का महत्व किसी धर्म या सम्प्रदाय के लिये नहीं, अपितु तर्कशास्त्र के लिये ही है। तर्कशास्त्र का जो महत्व मानव ज्ञान-विज्ञान में है वही महत्व प्राचीन काल में सामान्यतः जैनतर्कशास्त्र का था। यही कारण है कि परम्परोपजीवी जैनियों में वह आज तक जीवित है। किन्तु उनके लिये जैनतर्कशास्त्र का जो महत्व है वह हम लोगों के लिये जो जैनी नहीं है, नहीं है। अतः देखना है कि हमारे लिये जैनतर्क-शास्त्र का क्या महत्व आज है?

इस प्रसंग में सबसे पहले कहा जा सकता है कि जैनतर्कशास्त्र का ऐतिहासिक मूल्य है। प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय तर्कशास्त्र जिन-जिन स्थितियों से गुजरा है उनका सजीव वर्णन जैन तर्कशास्त्र में सुरक्षित है।[9] तर्कशास्त्र का आरम्भ धर्म से सम्बन्धित कुछ पदों से निर्वचन से हुआ। भद्रबाहु की निर्युक्तियाँ ऐसा ही निर्वचन करती है।[10] इन निर्वचनों को लेकर तात्त्विक तर्कशास्त्र का विकास हुआ, जिसका वर्णन सिद्धसेन दिवाकर का **सन्मति तर्कप्रकरण** करता है। इसी से न्याय पैदा होता है जो बुद्धि को सत् की ओर ले जाने के कारण न्याय कहलाता है। सिद्धसेन दिवाकर का **न्यायावतार** इस अवस्था को सूचित करता है।[11] फिर इसके बाद विवेचन, विश्लेषण और विवाद प्रकट होते हैं, जिनको लेकर मीमासां उत्पन्न होती है। समन्तभद्रकृत **आप्तमीमांसा** इस अवस्था को व्यक्त करती है।[12] न्याय और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मीमांसा दोनों दृष्टिकोणों का समन्वय करते हुए अकलंक ने सिद्धिविनिश्चय और न्यायविनिश्चय लिखकर सूचित किया कि वास्तव में तर्कशास्त्र में सिद्धि-प्रक्रिया और विनिश्चयप्रक्रिया का महत्व अधिक है।[13] फिर इनकी परीक्षा का प्रश्न उठता है और तर्कशास्त्र सम्बन्धी सभी विवेचनों की परीक्षा का महत्व बढ़ता है जिसकी अभिव्यक्ति माणिक्यनन्दि के **परीक्षामुखशास्त्र** में होती है।[14] परीक्षा का आधार प्रमाण होता है इस कारण तर्कशास्त्र की अग्रिम अवस्था **प्रमाण मीमांसा** हो जाती है जिसका विकसित रूप हमें हेमचन्द्र की **प्रमाण मीमांसा** में मिलता है।[15] आगे चलकर प्रमाण से भी अधिक महत्त्व तर्क या तर्कणा का हो जाता है जिसकी अभिव्यक्ति यशोविजय की **तर्कभाषा** में होती है। इस प्रकार निर्युक्तिशास्त्र से लेकर तर्कशास्त्र के विकास की सभी अवस्थाओं का वर्णन जैनदर्शन में सुरक्षित है। जैनप्रमाणवाद का यही ऐतिहासिक योगदान है।

दूसरे, जैनतर्कशास्त्र का तुलनात्मक और आलोचनात्मक महत्त्व है। यह बड़े महत्त्व की बात है कि जैनतर्कशास्त्रियों ने सांख्य, न्याय, मीमांसा, चार्वाक मतों के लक्षणों और सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन किया और उनकी आलोचना की। उदाहरण के लिये, हेमचन्द्र सूरि ने प्रमाण की उन परिभाषाओं का खण्डन किया जिन्हें न्याय, मीमांसा और बौद्ध दर्शन के विद्वानों ने दिया था। अनेक जैन तर्कशास्त्रियों ने बौद्ध न्याय-ग्रन्थों पर और चार्वाक न्याय-ग्रन्थों पर टीका-टिप्पणी की। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि यद्यपि न्याय-दर्शन के तर्कशास्त्री बौद्ध तर्कशास्त्रियों के द्वारा किये गये अपने सिद्धान्तों के खण्डन से परिचित हैं और उनको उत्तर भी देते हैं, तथापि वे जैनियों के द्वारा किये गये तुलनात्मक और आलोचनात्मक अनुशीलन से सर्वथा अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। यही हाल बौद्ध, मीमांसा और सांख्य के परवर्ती विद्वानों का भी है। अतः हम कह सकते हैं कि जैनियों ने भारतीय तर्कशास्त्र-सम्बन्धी विभिन्न लक्षणों और सिद्धान्तों का जो तुलनात्मक और आलोचनात्मक परिशीलन किया वह आधुनिक भारतीय तर्कशास्त्र को विकसित करने में सहायक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है।

तीसरे, तर्कशास्त्र का अध्ययन बुद्धि को विमल बनाता है, उसे कुशाग्र करता है। इस तथ्य को सभी प्राचीन दार्शनिकों ने धर्म के सन्दर्भ में कहा है। किन्तु जिस प्रकार सिद्धसेन दिवाकर ने **सन्मतितर्क प्रकरण** में तर्कशास्त्र को महत्व दिया है वैसा प्राचीन साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है। उनके मत से तर्कशास्त्र प्रभावक शास्त्र है और उसके ज्ञाता को अकल्पित सेवन के लिये प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता है।[16]

इस प्रकार जैन तर्कशास्त्रियों ने तर्कशास्त्र को उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया है। वह तर्कशास्त्र की गरिमा का अद्वितीय उदाहरण है।

चौथे, जैन तर्कशास्त्र का भाषा-वैज्ञानिक महत्त्व भी कम नहीं है। जैनों ने प्राकृत, संस्कृत, गुजराती और हिन्दी में अच्छा तर्कशास्त्र साहित्य निर्मित किया है। इन सभी भाषाओं में प्राकृत भाषा का महत्त्व तर्कशास्त्र के इतिहास में क्या है? इस प्रश्न को हल करने का एक मात्र साधन जैनतर्कशास्त्र है क्योंकि जैनियों ने प्राकृत भाषा में तर्कशास्त्र लिखे और जैनेतर तर्कशास्त्रियों ने प्राकृत भाषा में तर्कशास्त्र नहीं लिखे। बड़े आश्चर्य की बात है कि यद्यपि बौद्धों के धर्मग्रन्थ पालि भाषा में हैं तथापि इस भाषा में उनका एक भी तर्कशास्त्र ग्रन्थ नहीं है। प्राकृत भाषा संस्कृत और हिन्दी के बीच की कड़ी है। इसी प्रकार प्राकृत भाषा का तर्कशास्त्र भी संस्कृत भाषा के तर्कशास्त्र और हिन्दी भाषा के तर्कशास्त्र के बीच की कड़ी है। भाषा और तर्क का सम्बन्ध बहुत गाढ़ा है, यह तथ्य प्राचीन भारतीय दार्शनिकों को वैसे ही विदित था

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे आधुनिक दार्शनिकों को विदित है। किन्तु फिर भी जैनेतर तर्कशास्त्रियों ने प्राकृत भाषा में तर्कशास्त्र के ग्रन्थ नहीं लिखे। कदाचित् उन्होंने तर्क को बोलचाल की भाषा से सम्बन्धित नहीं किया था। जैनियों ने तर्क को बोल-चाल की भाषा से सम्बन्धित करके सिद्ध किया है कि तर्कशास्त्र एक जीवन्त शास्त्र है, और उसका महत्त्व दैनिक जीवन, भाषण और चिन्तन के लिये है। आधुनिक युग में जब प्राकृत बोलचाल की भाषा नहीं रह गयी तब जैन विद्वानों ने गुजराती और हिन्दी में तर्कशास्त्र लिखकर बोलचाल की भाषा से इसको पुनः जोड़ दिया है। पंडित सुखलाल संघवी ने यह महान कार्य किया है।

पाँचवे, अभी तक जिन मूल्यों का हमने विवेचन किया है वे उतने महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना तर्कशास्त्र का सांव्यवहारिक महत्त्व है। जैनियों ने बकवाद के लिये अथवा विवाद के लिये तर्कशास्त्र का सृजन नहीं किया। उनका तर्कशास्त्र प्रत्यक्षवादी तर्कशास्त्र तथा प्रत्ययवादी तर्कशास्त्र नहीं है। जिस प्रकार न्यायदर्शन ने प्रत्यक्षवादी तर्कशास्त्र और बौद्धों ने प्रत्ययवादी (Idealistic) तर्कशास्त्र को जन्म दिया, उसी प्रकार जैनियों ने सांव्यवहारिक तर्कशास्त्र (Pragmatic Logic) को जन्म दिया। जैनतर्कशास्त्र वैसे ही सांव्यवहारिक है जैसे जॉन डिवी और क्वाइन का सांव्यवहारिक तर्कशास्त्र। और यह वैसे ही नैयायिकों के तर्कशास्त्र से भिन्न है जैसे आज क्वाइन का तर्कशास्त्र कार्नप के तर्कशास्त्र से भिन्न है। जैनियों का सांव्यवहारिक दृष्टिकोण उनके स्याद्वाद और अनेकान्तवाद में भली-भाँति सुरक्षित है। पुनः परन्तु इसकी सर्वांग सुन्दर व्याख्या हेमचन्द्र सूरि के प्रमाण मीमांसा में मिलती है। हेमचन्द्र सूरि ने सम्यग् अर्थ निर्णय को प्रमाण कहा —सम्यगर्थनिर्णयः प्रमाणम्। फिर अर्थ की व्याख्या करते हुये उन्होंने कहा कि जो हेय, उपादेय या उपेक्षणीय हो वह अर्थ है। अर्थ और प्रमाण की ये परिभाषायें जैन तर्कशास्त्र के सांव्यवहारिक स्वरूप को उजागर करती हैं, पुनश्च जैनियों का नयवाद जो प्रत्येक कथन के व्यावहारिक मूल्य का अनुसंधान करता है उनके संव्यवहार का सबसे बड़ा प्रामाण्य है।

छठे, जैनियों ने एक अभितर्कशास्त्र (Metalogic) को जन्म दिया जो उनका समस्त भारतीय तर्कशास्त्र में सबसे बड़ा योगदान है। उन्होंने तर्कशास्त्र का मूल बोलचाल के प्रकथनों में ढूंढ़ा, और नयवाद का सिद्धान्त खोजा। किसी एक दृष्टिकोण से कहा गया प्राकथन नय है।[17] प्रामाण्य के दृष्टिकोण से वह सत्य (प्रमाणनय) असत्य (दुर्नय) और सत्यासत्य निरपेक्ष या अनिश्चित (नय) हो सकता है।[18] यहाँ जैनियों ने वास्तव में सत्यता के तीन मूल्यों की खोज की है, जिनकी जानकारी पश्चिम में केवल २०वीं सदी में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हो पायी है। सत्यता के इन तीन मूल्यों की तुलना लुकासेविग्ज के तीन सत्यता मूल्यों से की जा सकती है। प्रमाण नय स्याद्वाद है, दुर्नय एकांगी नय या असत्य नय है और नय अनिश्चित है। इस प्रकार सत्य, अनिश्चित और असत्य इन तीन सत्यता-मूल्यों को खोज जैनियों की बहुत बड़ी खोज है। उन्होंने तीन मूल्यों वाले तर्कशास्त्र का अधिक विकास नहीं किया और द्विमूल्यीय तर्कशास्त्र के बल पर ही अनुमान किया। परन्तु आज उनके नयवाद के आधार पर त्रिमूल्यीय तर्कशास्त्र की संरचना की जा सकती है।

अभितर्कशास्त्र के रूप में जैनियों ने सामान्य भाषा का तार्किक अनुशीलन किया। उन्होंने सप्तभंगी नय का सिद्धान्त बनाया, जिससे किसी विषय से सम्बन्धित सात प्रकार के कथन हो सकते हैं। यद्यपि इन सात प्रकार के कथनों का उपयोग उन्होंने अपने न्याय-वाक्य में नहीं किया तथापि उन्होंने इनके द्वारा अर्थ के विभिन्न प्रकारों को सुझाया है और किसी सन्दर्भ-विशेष में उससे सम्बन्धित अर्थ-ग्रहण पर बल दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार आधुनिक युग में हम प्राचीन जैनतर्कशास्त्र का उपयोग तर्कशास्त्र के लिये कर सकते हैं। इसके आधार पर हम कम से कम तीन दिशाओं में भारतीय तर्कशास्त्र का विकास कर सकते हैं।

पहला, हम जैनतर्कशास्त्र की परम्परा के अनुकूल एक अभितर्कशास्त्र विकसित कर सकते हैं जो आधुनिक पाश्चात्य अभितर्कशास्त्र से भिन्न है।

दूसरा, हम एक त्रिमूल्यीय तर्कशास्त्र विकसित कर सकते हैं, या जैन त्रिमूल्यीय तर्कशास्त्र को लुकासेविग्ज के त्रिमूल्यीय तर्कशास्त्र से जोड़ सकते हैं।

तीसरे, हम सामान्य लोकभाषा में तर्कशास्त्र-परम्परा को विकसित कर सकते हैं जिसका सूत्रपात जैनियों ने अपने नयवाद में किया है। यही जैनतर्कशास्त्र का आधुनिक महत्व है।

इस प्रकार अब स्पष्ट है कि जैनतर्कशास्त्र का प्रमाणवाद किसी म्यूजियम की वस्तु नहीं है। उसका आज भी महत्त्व है। जिस प्रकार जैन विद्वान् अनेकान्तवाद के आधार पर आज-कल सभी धर्मों का समन्वय कर रहे हैं उसी प्रकार उन्हें आज-कल विविध तर्कशास्त्रियों और अभितर्कशास्त्रियों का भी समन्वय करना चाहिये या कम से कम उनका तुलनात्मक और आलोचनात्मक अनुशीलन करना चाहिये। अगर इतना वे इस युग में करते हैं तब वे तर्कशास्त्र के क्षेत्र में अपनी परम्परा का पूर्ण निर्वाह करते हैं। यदि वे कोई नया तर्कशास्त्र या अभितर्कशास्त्र नहीं बनाते और आधुनिक सभी तर्कशास्त्रों और अभितर्कशास्त्रों के समन्वयात्मक अनुशीलन तक ही अपने को सीमित रखते हैं तो भी उनका कार्य सर्वथा मौलिक, प्रशंसनीय और युगीन होगा। हमारे मत से जो भी लोग यह कार्य आज कर रहे हैं वे सभी जैन परम्परा का ही पालन कर रहे हैं। आज के विभिन्न तर्कशास्त्रों में इतना अन्तर होता जा रहा है, कि एक दूसरे की भाषा को भी नहीं समझ सकता है। इस तार्किक परिस्थिति का सामना करना और सभी तर्कशास्त्रों को एक दूसरे के सन्निकट लाना और एक को दूसरे के लिये बोधगम्य बनाना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना किसी मौलिक तर्कशास्त्र का सृजन करना। हम मानते हैं कि ज्ञान एक और अखण्ड है। इसलिये यह समन्वयात्मक कार्य सम्भव है। इस प्रकार जैन प्रमाणवाद की आधुनिक दिशा अत्यन्त सुस्पष्ट हो जाती है। □□

---

1. प्रमाण स्वपराभासि—न्यायावतार 1
2. अपूर्वार्थ विज्ञानम्—परीक्षामुखशास्त्र 1/1
3. सम्यगर्थनिर्धारणं प्रमाणः—प्रमाणत्रयी माला।
4. सम्यगर्थनिर्णयः प्रमाणम्—प्रमाणमीमांसा।
5. प्रमाकरणम् प्रमाणम्— तर्कभाषा पृष्ठ 13 (विश्वेश्वर कृत व्याख्या)
6. प्रत्यक्षस्यापि प्रमाणान्तर पूर्वकत्वोपलब्धेः। (प्रमाणमीमांसा 1/10 वृत्ति)
7. प्रमाणमीमांसा—1/2 की वृत्ति।
8. देखिये उनका मूल—इण्डियन लाजिक।

9-16. सन्मतितर्थ प्रकरण की प्रस्तावना—(सुखलाल संघवी पृष्ठ 4)।

17. एकदेश विशिष्टोर्थो नयस्य विषयोमतः। (न्यायावतार 29)।
18. स्याद्वाद मंजरी, मल्लिसेन, श्लोक—28

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org